

सुर- नत- मुकुट रतन छवि करें, अंतर पाप- तिमिर सब हरें ।
जिनपद वंदूं मन वच काय, भव- जल- पतित उधरन- सहाय ॥१॥

श्रुत- पारग इंद्रादिक देव, जाकी थुति कीनी कर सेव ।
शब्द मनोहर अरथ विशाल, तिन प्रभु की वरनूं गुन- माल ॥२॥

विबुध- वंद्य पद मैं मति- हीन, हो निलज्ज थुति मनसा कीन ।
जल- प्रतिबिंब बुद्ध को गहे, शशिमंडल बालक ही चहे ॥३॥

गुन- समुद्र तुम गुन अविकार, कहत न सुर- गुरु पावें पार ।
प्रलय- पवन- उद्धत जल- जंतु, जलधि तिरे को भुज बलवंतु ॥४॥

सो मैं शक्ति- हीन थुति करूं, भक्ति- भाव- वश कछु नहीं डरूं ।
ज्यों मृगि निज- सुत पालन हेत, मृगपति सन्मुख जाय अचेत ॥५॥

मैं शठ सुधी- हँसन को धाम, मुझ तव भक्ति बुलावे राम ।
ज्यों पिक अंब- कली परभाव, मधु- ऋतु मधुर करे आराव ॥६॥

तुम जस जंपत जन छिन माँहिं, जनम- जनम के पाप नशाहिं ।
ज्यों रवि उगे फटे ततकाल, अलिवत् नील निशा- तम- जाल ॥७॥

तव प्रभाव तें कहूँ विचार, होसी यह थुति जन- मन- हार ।
ज्यों जल कमल- पत्र पे परे, मुक्ताफल की द्युति विस्तरे ॥८॥

तुम गुन- महिमा- हत दुः ख- दोष, सो तो दूर रहो सुख- पोष ।
पाप- विनाशक है तुम नाम, कमल- विकासी ज्यों रवि- धाम ॥९॥

नहिं अचंभ जो होहिं तुरंत, तुमसे तुम- गुण वरणत संत ।
जो अधीन को आप समान, करे न सो निंदित धनवान ॥१०॥

इकटक जन तुमको अवलोय, अवर विषै रति करे न सोय ।
को करि क्षार- जलधि जल पान, क्षीर नीर पीवे मतिमान ॥११॥

प्रभु! तुम वीतराग गुण-लीन, जिन परमाणु देह तुम कीन।
हैं तितने ही ते परमाणु, या तें तुम सम रूप न आनु॥१२॥

कहँ तुम मुख अनुपम अविकार, सुर-नर-नाग-नयन-मन हार।
कहाँ चंद्र-मंडल सकलंक, दिन में ढाक-पत्र सम रंक॥१३॥

पूरन चंद्र-ज्योति छविवंत, तुम गुन तीन जगत् लंघंत।
एक नाथ त्रिभुवन-आधार, तिन विचरत को करे निवार॥१४॥

जो सुर-तिय विभ्रम आरम्भ, मन न डिग्यो तुम तोउ न अचंभ।
अचल चलावे प्रलय समीर, मेरू-शिखर डगमगें न धीर॥१५॥

धूम-रहित बाती गत नेह, परकाशे त्रिभुवन-घर एह।
वात-गम्य नाहीं परचंड, अपर दीप तुम बलो अखंड॥१६॥

छिपहु न लुपहु राहु की छाहिं, जग-परकाशक हो छिन-माहिं।
घन-अनवर्त दाह विनिवार, रवि तें अधिक धरो गुणसार॥१७॥

सदा उदित विदलित तममोह, विघटित मेघ-राहु-अवरोह।
तुम मुख-कमल अपूरब चंद्र, जगत्-विकाशी जोति अमंद॥१८॥

निश-दिन शशि रवि को नहीं काम, तुम मुख चंद्र हरे तम-धाम।
जो स्वभाव तें उपजे नाज, सजल मेघ तें कौनहु काज॥१९॥

जो सुबोध सोहे तुम माँहिं, हरि हर आदिक में सो नाहिं।
जो द्युति महा-रतन में होय, कांच खंड पावे नहीं सोय॥२०॥

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया।
स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया॥
कछू न तोहि देखके जहाँ तुही विशोखिया।
मनोग चित्त-चोर ओर भूल हू न पेखिया॥२१॥

अनेक पुत्रवंतिनी नितंबिनी सपूत हैं।
न तो समान पुत्र और मात तें प्रसूत हैं॥
दिशा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिने।
दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जने॥२२॥

पुरान हो पुमान हो पुनीत पुण्यवान हो।
कहें मुनीश! अंधकार-नाश को सुभानु हो॥
महंत तोहि जान के न होय वश्य काल के।
न और मोहि मोक्ष पंथ देय तोहि टाल के॥२३॥

अनंत नित्य चित्त की अगम्य रम्य आदि हो।
असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो॥
महेश कामकेतु जोगि ईश योग ज्ञान हो।
अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो॥२४॥

तुही जिनेश! बुद्ध है सुबुद्धि के प्रमान तें।
तुही जिनेश! शंकरो जगत्त्रयी विधान तें॥
तुही विधात है सही सुमोख पंथ धार तें।
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थ के विचार तें॥२५॥

नमो करूँ जिनेश! तोहि आपदा निवार हो।
नमो करूँ सु भूरि भूमि-लोक के सिंगार हो॥
नमो करूँ भवाब्धि-नीर-राशि-शोष हेतु हो।
नमो करूँ महेश! तोहि मोख पंथ देतु हो॥२६॥

तुम जिन पूरन गुन-गन भरे, दोष गर्व करि तुम परिहरे।
और देव-गण आश्रय पाय, स्वप्न न देखे तुम फिर आय॥२७॥

तरु अशोक-तल किरन उदार, तुम तन शोभित है अविकार।
मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत, दिनकर दिपे तिमिर निहनंत॥२८॥

सिंहासन मणि-किरण-विचित्र, ता पर कंचन-वरन पवित्र।
तुम तन शोभित किरन विथार, ज्यों उदयाचल रवि तम-हार ॥२९॥

कुंद-पुहुप-सित-चमर ढरंत, कनक-वरन तुम तन शोभंत।
ज्यों सुमेरु-तट निर्मल कांति, झरना झरे नीर उमगांति ॥३०॥

ऊँचे रहें सूर-दुति लोप, तीन छत्र तुम दिपें अगोप।
तीन लोक की प्रभुता कहें, मोती झालरसों छवि लहें ॥३१॥

दुंदुभि-शब्द गहर गंभीर, चहुँ दिशि होय तुम्हारे धीर।
त्रिभुवन-जन शिव-संगम करें, मानो जय जय रव उच्चरें ॥३२॥

मंद पवन गंधोदक इष्ट, विविध कल्पतरु पुहुप सुवृष्ट।
देव करें विकसित दल सार, मानो द्विज-पंकति अवतार ॥३३॥

तुम तन-भामंडल जिन-चंद्र, सब दुतिवंत करत हैं मंद।
कोटि संख्य रवि तेज छिपाय, शशि निर्मल निशि करे अछाय ॥३४॥

स्वर्ग-मोख मारग संकेत, परम-धरम उपदेशन हेत।
दिव्य वचन तुम खिरें अगाध, सब भाषा-गर्भित हित-साध ॥३५॥

विकसित-सुवरन-कमल-दुति, नख-दुति मिलि चमकाहिं।
तुम पद पदवी जहँ धरो, तहँ सुर कमल रचाहिं ॥३६॥

ऐसी महिमा तुम-विषै, और धरे नहिं कोय।
सूरज में जो जोत है, नहिं तारा-गण होय ॥३७॥

मद-अवलिप्त-कपोल-मूल अलि-कुल झँकारें।
तिन सुन शब्द प्रचंड क्रोध उद्धत अति धारें ॥
काल-वरन विकराल कालवत् सनमुख आवे।
ऐरावत सो प्रबल सकल जन भय उपजावे ॥
देखि गयंद न भय करे, तुम पद-महिमा लीन।
विपति-रहित संपति-सहित, वरतैं भक्त अदीन ॥३८॥

अति मद मत्त गयंद कुंभ थल नखन विदारे।
मोती रक्त समेत डारि भूतल सिंगारे॥
बाँकी दाढ़ विशाल वदन में रसना लोले।
भीम भयानक रूप देख जन थरहर डोले॥
ऐसे मृग-पति पग-तले, जो नर आयो होय।
शरण गये तुम चरण की, बाधा करे न सोय॥३९॥

प्रलय-पवनकरि उठी आग जो तास पटंतर।
वमे फुलिंग शिखा उतंग पर जले निरंतर॥
जगत् समस्त निगल्ल भस्म कर देगी मानो।
तड़-तड़ाट दक्-अनल जोर चहुँ-दिशा उठानो॥
सो इक छिन में उपशमे, नाम-नीर तुम लेत।
होय सरोवर परिनमे, विकसित-कमल समेत॥४०॥

कोकिल-कंठ-समान श्याम-तन क्रोध जलंता।
रक्त-नयन फुंकार मार विष-कण उगलंता॥
फण को ऊँचा करे वेगि ही सन्मुख धाया।
तव जन होय निःशंक देख फणपति को आया॥
जो चाँपे निज पग-तले, व्यापे विष न लगार।
नाग-दमनि तुम नाम की, है जिनके आधार॥४१॥

जिस रन माहिं भयानक रव कर रहे तुरंगम।
घन-सम गज गरजाहिं मत्त मानों गिरि-जंगम॥
अति-कोलाहल-माँहिं बात जहँ नाहिं सुनीजे।
राजन को परचंड देख बल धीरज छीजे॥
नाथ तिहारे नाम तें, अघ छिन माँहि पलाय।
ज्यों दिनकर परकाश तें, अंधकार विनशाय॥४२॥

मारें जहाँ गयंद कुंभ हथियार विदारे।
उमगे रुधिर-प्रवाह वेग जल-सम विस्तारे॥
होय तिरन असमर्थ महाजोधा बलपूरे।

तिस रन में जिन तोर भक्त जे हैं नर सूरे ॥
दुर्जय अरिकुल जीतके, जय पावें निकलंक ।
तुम पद पंकज मन बसें, ते नर सदा निशंक ॥ ४३ ॥

नक्र चक्र मगरादि मच्छ करि भय उपजावे ।
जा में बड़वा अग्नि दाह तें नीर जलावे ॥
पार न पावे जास थाह नहिं लहिये जाकी ।
गरजे अतिगंभीर लहर की गिनति न ताकी ॥
सुख सों तिरें समुद्र को, जे तुम गुन सुमिराहिं ।
लोल-कलोलन के शिखर, पार यान ले जाहिं ॥ ४४ ॥

महा जलोदर रोग-भार पीड़ित नर जे हैं ।
वात पित्त कफ कुष्ट आदि जो रोग गहे हैं ॥
सोचत रहें उदास नाहिं जीवन की आशा ।
अति घिनावनी देह धरें दुर्गाधि निवासा ॥
तुम पद पंकज-धूल को, जो लावें निज-अंग ।
ते नीरोग शरीर लहि, छिन में होय अनंग ॥ ४५ ॥

पाँव कंठ तें जकड़ बाँध साँकल अतिभारी ।
गाढ़ी बेड़ी पैर-माहिं जिन जाँघ विदारी ॥
भूख-प्यास चिंता शरीर-दुःख जे विललाने ।
सरन नाहिं जिन कोय भूप के बंदीखाने ॥
तुम सुमिरत स्वयमेव ही, बंधन सब खुल जाहिं ।
छिन में ते संपति लहें, चिंता भय विनसाहिं ॥ ४६ ॥

महामत्त गजराज और मृगराज दवानल ।
फणपति रण-परचंड नीर-निधि रोग महाबल ॥
बंधन ये भय आठ डरपकर मानों नाशे ।
तुम सुमिरत छिनमाहिं अभय थानक परकाशे ॥
इस अपार-संसार में, शरन नाहिं प्रभु कोय ।
या तें तुम पद भक्त को, भक्ति सहाई होय ॥ ४७ ॥

यह गुनमाल विशाल नाथ! तुम गुनन सँवारी।
विविध-वर्णमय-पुहुप गूँथ मैं भक्ति विथारी॥
जे नर पहिरेँ कंठ भावना मन में भावेँ।
'मानतुंग'-सम निजाधीन शिवलक्ष्मी पावेँ॥
भाषा-भक्तामर कियो, 'हेमराज' हित-हेत।
जे नर पढ़ें सुभाव-सों, ते पावेँ शिव खेत॥४८॥